वैश्विक पूंजी प्रवाह और भारतीय अर्थव्यवस्था:अवसर और चुनौतियां*

दीपक मोहंती

मैं भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर और श्री सुहास बदेरिया का आभारी हूं जिन्होंने मुझे प्रतिभाशाली युवाओं की इस सभा में भाषण देने का सुअवसर दिया। जैसा कि आप जानते ही हैं, पूंजी प्रवाहों ने वैश्वीकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। जहां ये प्रवाह अपने साथ अनेक लाभ लाते हैं वहीं उनके साथ कुछ जोखिमें भी आती हैं। आज के मेरे भाषण का विषय यह है कि भारत में हमने अपने बाह्य क्षेत्र की सुदृढ़ता बढ़ाने में इस मामले को कैसे हैंडल किया है।

पूंजी प्रवाह सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों रूप में पहेली सामने रखते हैं। एक ओर, वे संसाधनों की कम करके और प्रौद्योगिकी अंतरण में सहायता करके आधुनिक समय की अर्थव्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। दूसरी ओर, उनपर अनेक बाह्य ऋण और वित्तीय संकटों का दोष लगाया जाता है। पूंजी प्रवाहों की विभिन्न स्थितियों को समझना बौद्धिक रूप से चुनौतीपूर्ण है क्योंकि वास्तविकता काउंटर से सिद्धांत की ओर बढ़ती है। उदाहरण के लिए, नव क्लासिकल आर्थिक सिद्धांत कहता है कि पूंजी प्रवाह तुलनात्मक रूप से अधिक पूंजी-श्रम अनुपात वाले उन्नत देशों (पूंजी की अधिकता वाले देश) से कम पूंजी-श्रम अनुपात वाले विकासशील देशों (श्रम की अधिकता वाले देश) को होना चाहिए। जबकि विरोधात्मक रूप से पूंजी प्रवाह विकासशील से उन्नत देशों की ओर होता है जैसा कि हाल के वर्षों में देखा गया है।

निजी पूंजी प्रवाहों का इतिहास

प्रथम विश्व युद्ध से पहले की अवधि में अर्थात 19 वीं शताब्दी और 20 वीं शताब्दी के प्रारंभ तक लंदन वित्तीय गतिविधियों का प्रमुख केंद्र था और आज के अनेक विकसित देश उस समय विकासशील थे। इस अवधि में विकासशील देशों और विशेष रूप से अमरीका, कनाडा और आस्ट्रेलिया में निजी निवेश में काफी विस्तार हुआ। आगे यह अर्जेंटीना, ब्राजील, मेक्सिको और भारत तक बढ़ा। विकासशील देशों को पूंजी प्रवाह दो प्रकार का था: विभिन्न स्तर के सार्वजनिक प्रशासन द्वारा बांड निर्गम और विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफडीआई)।

1920 के दशक में गृहयुद्ध के बाद अमरीका प्रमुख उधारदाता के रूप में उभरा। इसके कारण न्यूयार्क अंतरराष्ट्रीय उधारदाता के रूप में उभरा और उसकी यह स्थिति 1929 की महामंदी तक बनी रही। गृहयुद्ध के दौरान भारी मात्रा में ऋण चुकौती संबंधी चूक भी हुई। लैटीन अमरीका को विदेशी उधार में अचानक विराम का सामना करना पड़ा। द्वितीय विश्व युद्ध के तुरंत बाद की अवधि में विकासशील देशों ने वैश्विक पूंजी बाजार से कोई भी उधार नहीं लिया। निजी संविभागीय निवेश और बैंक उधार 1960 के दशक में ही शुरू हो पाए। 1980 के दशक तक निजी पूंजी प्रवाहों में काफी वृद्धि हुई। यह वह समय था जब लैटीन अमरीका का ऋण संकट उभरा जिसने अधिक बजट घाटे और अधिमूल्यांकित विनिमय दरों के कारण समष्टिआर्थिक असंतुलन दर्शाया। बाद में पूर्वी एशियाई अर्थव्यवस्थाओं का समष्टिआर्थिक आधार मजबूत होने के बावजूद 1997 में उन्हें मुद्रा संकट का सामना करना पड़ा। दुर्बलता उभरने का मुख्य कारण बैंकों और कंपनियों द्वारा भारी मात्रा में अल्पकालिक बाह्य उधार लेना था।

ऋण संकट के माध्यम से होने वाली एक सामान्य बात यह थी कि लगभग सभी एपिसोडों में उधार की प्रक्रिया में अचानक रुकावट आयी या पूंजी प्रवाह विपरीत दिशा में मुड़ गये जिससे उधारकर्ता देशों में समस्या आ गयी। उभरती और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं (ईडीई) ने संकट से क्या सीखा? वर्ष 2000 के दशक में ईडीई में सकल पूंजी प्रवाह बढ़ा किंतु 2008 में वैश्विक वित्तीय संकट के कारण इसमें रुकावट आयी जिससे उनके बाह्य तुलनपत्रों में आघात सहनियता देखी गयी। यह बात प्रमुख ईडीई की अंतरराष्ट्रीय निवेश की स्थिति के घटकों में हुए परिवर्तन से दिखी[1]। एक जमाने में ईडीई की बाह्य देयताओं में मुख्यत: ऋण ही थे। अब एफडीआई और संविभागीय इक्विटी संयुक्त रूप से उनकी देयताओं का मुख्य

* श्री दीपक मोहंती, कार्यपालक निदेशक, भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी), कानपुर में टेककृति 2012 में 28 जनवरी 2012 को दिया गया भाषण। सर्वश्री राजीव रंजन, राजन गोयल, सोमनाथ शर्मा और कुमार रिषभ से प्राप्त सहायता के लिए हम उनके हार्दिक आभारी हैं।

[1] अंतरराष्ट्रीय निवेश स्थिति शेष विश्व के संबंध में किसी देश का तुलनपत्र होता है जिसका एक पक्ष आधिकारिक भंडार सहित कुल विदेशी आस्तियां होती हैं और दूसरा उसकी बाह्य देयताएं होती हैं।

भाग है (सारणी1)। निवल ऋण प्रवाह की तुलना में एफडीआई और संविभागीय इक्विटी प्रवाह का यह लाभ है कि एफडीआई और संविभागीय इक्विटी के मामले में उधारदाता और उधारकर्ता के बीच जोखिम का बंटवारा होता है। इतना ही नहीं, अन्य पूंजी प्रवाहों की तुलना में एफडीआई प्रवाह अधिक स्थिर होते हैं।

अन्य अच्छी बात यह हुई कि ईडीई की समग्र बाह्य आस्तियों में विदेशी मुद्रा भंडार बढ़ा है। इससे निजी क्षेत्र द्वारा जोखिम लेने को प्रतिबल प्राप्त हुआ है। निसंदेह, यह वादविवाद का एक अन्य मुद्दा है कि कितना विदेशी भंडार पर्याप्त होगा और किस स्तर पर लागत की तुलना में लाभ को उपयुक्त मानना होगा। किंतु इस बात में कोई विवाद नहीं है कि विदेशी मुद्रा भंडार से अर्थव्यवस्था को और विशेष रूप से ईडीई को आंतरिक मजबूती और स्थिरता प्राप्त होती है।

ईडीई को पूंजी प्रवाह

ईडीई को सकल पूंजी प्रवाह 1999 के 200 बिलियन अमरीकी डॉलर से आठ गुना बढ़कर 2008 के संकट से कुछ ही पहले 2007 में 1,700 बिलियन अमरीकी डॉलर हो गए। जहां एफडीआई में निरंतर वृद्धि पूर्णत: स्थिर बनी रही, वहीं वृद्धि पर संविभागीय और अन्य निवेशों की प्रमुखता थी। संकट के दौरान इन अर्थव्यवस्थाओं को सकल संविभागीय पूंजी अतर्वाह 2007 के 420 बिलियन अमरीकी डॉलर से तेजी से कम होकर 2008 में लगभग 10 बिलियन अमरीकी डॉलर रह गया (चार्ट 1)।

चार्ट 1: उभरती और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में सकल पूंजी प्रवाह

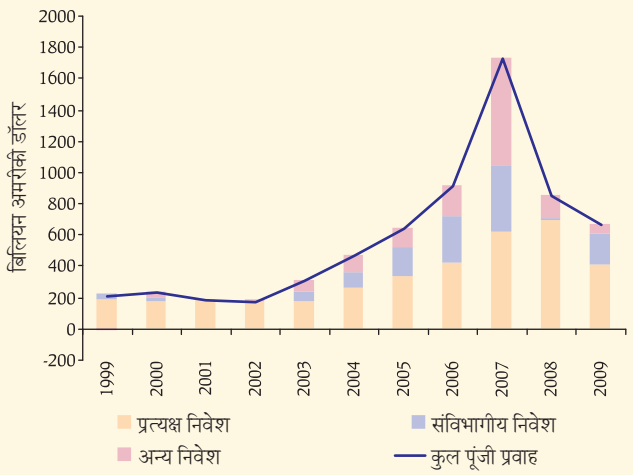

स्रोत: जीएफएसआर, आईएमएफ

पूंजी प्रवाहों में दीर्घकालिक प्रवृत्ति दर्शाती है कि पूंजी प्रवाह उच्च स्तर पर पहुंचने के बाद उनमें गिरावट होती है। 2000 के दशक में ईडीई को निवल पूंजी प्रवाह 2008 के वैश्विक वित्तीय संकट के कुछ ही पहले बढ़कर उनकी जीडीपी के 4 प्रतिशत हो गए थे (चार्ट 2)।

सारणी 1: बाह्य देयताओं और आस्तियों के प्रमुख घटक

प्रतिशत	बाह्य देयता के रूप में हिस्सा									बाह्य आस्तियों के रूप में हिस्सा		
	एफडीआई			संविभागीय इक्विटी			एफडीआई और संविभागीय इक्विटी			विदेशी मुद्रा भंडार		
	2000	2007	2010	2000	2007	2010	2000	2007	2010	2000	2007	2010
उन्नत अर्थव्यवस्थाएं												
औसत (माध्य)	20.0	18.4	19.7	15.0	13.8	9.9	40.3	38.6	31.4	5.8	1.9	1.2
उभरते बाजार												
औसत (माध्य)	31.8	39.4	40.5	3.7	8.4	8.2	34.4	56.7	56.2	34.6	43.7	38.8
चुनिंदा उन्नत अर्थव्यवस्थाएं												
यूरो क्षेत्र का औसत	17.7	17.0	15.5	20.2	15.8	12.4	38.0	32.7	27.9	2.1	0.7	0.7
यूनाइटेड किंगडम	10.2	7.6	7.2	22.2	10.4	9.9	32.5	18.0	17.1	0.8	0.3	0.3
अमरीका	18.8	11.9	11.7	21.7	16.0	13.1	40.4	27.9	24.8	0.5	0.2	0.3
चुनिंदा उभरते बाज़ार												
ब्राजील	32.8	33.6	36.5	9.9	39.6	33.3	42.7	73.2	69.8	33.2	48.5	47.1
चीन	59.4	57.3	63.2	5.7	5.6	8.8	61.4	66.3	65.6	37.6	63.3	69.0
भारत	14.7	25.8	32.5	12.6	24.8	18.5	27.2	50.5	51.1	59.8	79.4	67.9
रूस	17.5	39.5	38.6	6.0	24.9	17.5	23.5	64.4	56.1	9.8	42.7	36.6
दक्षिण अफ्रीका	43.5	39.0	41.5	22.6	38.9	35.0	66.1	77.9	76.5	6.2	13.6	13.4

यह सारणी प्रसाद, ईश्वर,2011, 'रोल रिवर्सल इन ग्लोबल फिनान्स', आईजेडए चर्चा पत्र सं.6032 से ली गयी है।

चार्ट 2: ईडीई को निवल पूंजी प्रवाह

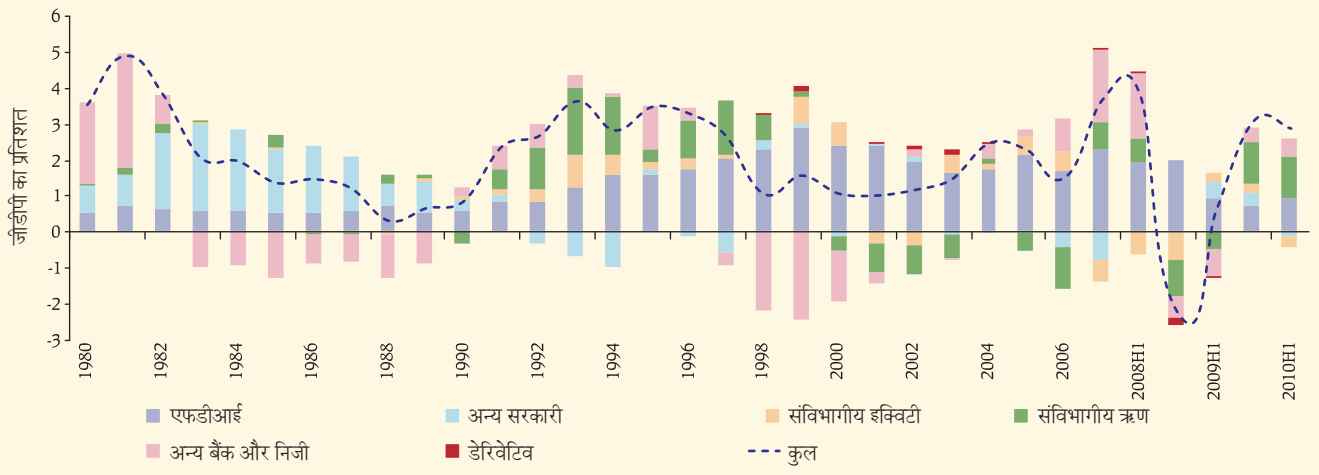

स्रोत: डब्ल्यूईओ, आईएमएफ।

पूंजी प्रवाह के निर्धारक

अंतरराष्ट्रीय पूंजी प्रवाहों को स्पष्ट करने वाले कारकों को 'पुश' कारक की श्रेणी में रखा जाता है जो कि किसी अर्थव्यवस्था में बाहरी होते हैं और 'पुल' कारक किसी अर्थव्यवस्था के आंतरिक कारक होते हैं। पुश कारकों में मानदंड शामिल होते हैं जैसे कि उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में कम ब्याज दर, चलनिधि की प्रचुरता, धीमी वृद्धि और देशी निवेश अवसरों का अभाव और साथ ही विनियमन हटाना, जिससे औद्योगिक देशों में अधिक वैश्विक जोखिम का विविधीकरण हो जाता है। पुश कारकों में अन्य मानदंड शामिल होते हैं जैसे कि ईडीई में मजबूत आर्थिक निष्पादन और सुधारित निवेश वातावरण जो कि व्यापार-श्रृंखला, वित्तीय और कानूनी सुधारों का परिणाम होता है। किंतु किसी विशेष स्थिति में कौनसा कारक प्रभावी होगा यह कहना कठिन होता है।

पूंजी प्रवाह के लाभ और जोखिम

सिद्धांत में, देशों के बीच पूंजी के मुक्त प्रवाह से विश्व में बचतकर्ताओं तथा निवेशकों के बीच संसाधनों का अधिक कुशलता से विनिधान होना चाहिए। इसके अलावा, पूंजी की कमी वाले विकासशील देशों में पूंजी प्रवाह के साथ तकनीकी ज्ञान भी आता है और इस प्रकार इससे प्राप्तकर्ता देश में वृद्धि बढ़नी चाहिए और बाहरी आघातों के जवाब में उनके उपभोग और निवेश में अस्थिरता कम होने में सहायता मिलनी चाहिए। किंतु इस स्थिति का अधिक विस्तार नहीं हुआ है[2]।

जहां माल के खुले व्यापार की वांछितता पर अर्थशास्त्रियों के बीच व्यापक सहमति है, वहीं वित्तीय खुलेपन के सद्गुण के संबंध में काफी मतभेद हैं। जगदिश भगवती जैसे मुक्त व्यापार के मजबूत समर्थक ने भी वित्तीय आस्तियों के मुक्त व्यापार के लाभ पर संदेह जताया है। प्रसाद, राजन और सुब्रमणियन (2007)[3] का मत है कि गैर-औद्योगिक देशों के बीच विदेशी पूंजी पर कम निर्भरता उच्च वृद्धि से जुड़ी है।

पूंजी नियंत्रण

ईडीई के मूल घटक अच्छे होने और उनकी बाह्य देयता में सुधार होने के बावजूद 2008 के संकट के दौरान उन्हें अचानक विपरीत स्थिति का सामना करना पड़ा जिससे पूंजी नियंत्रण संबंधी अनेक प्रश्न पुन: सामने आ गए। पूंजी प्रवाह स्थिर/प्रबंधित विनिमय दर और मुद्रास्फीति के लक्ष्य की स्थिति से उसी समय संबद्ध हो गए - जिसे मुंडले की 'इंपॉसिबल ट्रिनिटी' कहते हैं। लचीले विनिमय दर वाले ईडीई विनिमय दर की अस्थिरता और व्यापार प्रतिस्पर्धात्मकता की हानि केंद्रीय बैंकों को अवसर के अनुसार विदेशी मुद्रा बाजार में हस्तक्षेप करने के लिए प्रोत्साहित करती है। यदि उसे अनियंत्रित छोड़ दिया जाता है तो इससे स्फीतिकारी परिणामों के साथ देशी चलनिधि में वृद्धि होती है। किंतु इस नियंत्रण की अर्ध राजकोषीय लागत होती है।

इस पृष्ठभूमि में पूंजी नियंत्रण, विशेष रूप से वित्तीय लेनदेन कर जो कि *तोबीन कर* का रूप है, लागू करने पर जी-20 और

[2] कार्डोसो, ईए और आर.डॉर्नबुश, (1989) एच.चेनरी और श्रीनिवासन टी.एन. में 'फॉरेन कॅपिटल फ्लोज', *हैंडबुक ऑफ डेवलपमेंट इकोनोमिक्स, खंड2*, 1416-1439, एम्सटरडम: एल्सेवियर साइंस पब्लिशर्स।

[3] प्रसाद, ईश्वर एस.,रघुराम जी.राजन और अरविंद सुब्रमणियम (2007), 'फॉरेन कॅपिटल एंड इकोनोमिक ग्रोथ', आर्थिक गतिविधियों पर ब्रुकिंग्स पेपर।

आईएमएफ जैसे बहुविध मंचों पर नीति निर्माताओं के बीच और शैक्षिक क्षेत्रों में भी व्यापक चर्चा हो रही है।

यह उल्लेखनीय है कि ब्रेटन वुड्स संस्था ने पूंजी नियंत्रण पर उनकी पहले की नीति को शिथिल किया है। आईएमएफ के स्वयं के स्वतंत्र आकलन कार्यालय ने पाया है कि 1990 के दशक के दौरान आईएमएफ ने इसने अपने सदस्य देशों को सूचित द्विपक्षीय नीति में पूंजी खाता उदारीकरण को स्पष्ट रूप से प्रोत्साहन दिया है। आईएमएफ की बहुपक्षीय निगरानी ने भी अंतरराष्ट्रीय पूंजी प्रवाहों तक अधिक पहुंच वाले विकासशील देशों के लाभ पर बल दिया है। किंतु 2008 के संकट के बाद आईएमएफ ने फरवरी 2010 में एक नीतिगत नोट में 'उन स्थितियों का उल्लेख किया है जिनमें पूंजी नियंत्रण पूंजी प्रवाहों में वृद्धि के नीतिगत जवाब में विधिक घटक हो सकता है'। विश्व बैंक ने भी इस बात को माना है कि 'वित्तीय संकट को कम करने और समष्टि आर्थिक विकास को स्थिर करने में सहायता के लिए पूंजी नियंत्रण को अंतिम सहारे के रूप में उपयोग में लाना चाहिए'। जी-20 ने अक्तूबर 2011 में माना है कि 'अस्थिरता के दबाव कम होने पर वित्तीय स्थिरता को बनाए रखने के लिए पूंजी नियंत्रण को अपनाया या उलटा जा सकता है'।

इस पृष्ठभूमि में, अब मैं पूंजी प्रवाहों संबंधी हमारी नीति की उत्पत्ति और अनुभव की चर्चा करना चाहूंगा।

भारत में पूंजी खाता प्रबंधन

भारत में पूंजी खाता उदारीकरण की शुरुआत सही अर्थों में भुगतान संतुलन के गंभीर संकट के बाद 1991 में हुई। सुधार के लिए विश्लेषणात्मक बुनियाद का आधार तीन रिपोर्टें बनीं: उच्च स्तरीय भुगतान संतुलन समिति की रिपोर्ट (अध्यक्ष: सी.रंगराजन,1991) और पूंजी खाता परिवर्तनीयता पर दो रिपोर्टें (अध्यक्ष: एस.एस.तारापोर, 1997 और 2006)। इन रिपोर्टों में अन्य बातों के साथ-साथ निम्न सुझाव दिए गए थे: (i) निजी पूंजी अंतर्वाहों को प्रोत्साहन, (ii) ऋण निर्मिती से ऋण निमिर्त न करने वाले प्रवाहों में अंतरण (iii) ऋण अंतर्वाहों में अल्पकालिक से दीर्घकालिक ऋण में अंतरण (iv) बाह्य वाणिज्यिक उधारों की निगरानी पर बल (v) बहिर्वाहों का क्रमिक उदारीकरण।

भारत में पूंजी खाता उदारीकरण एक घटना के बजाय एक प्रक्रिया समझी गयी। इस प्रक्रिया की क्रमिकता निहित देशी समष्टिआर्थिक मूल तत्वों और भुगतान संतुलन की सुदृढ़ता की शर्त पर थी। तब से इस संबंध में काफी प्रगति हुई जैसा कि हमारे बाह्य लेखे की स्थिरता को दुर्बल किए बिना पूंजी प्रवाहों की मात्रा और विविधता से देखा जा सकता है।

पूंजी खाता उदारीकरण के संबंध में भारत की स्थिति एक ओर निवासियों और अनिवासियों द्वारा पूंजी लेनदेनों के प्रति इसके नीतिगत रुझान और दूसरी ओर सीमापारीय प्रवाहों के निहित लिखतों के संदर्भ में देखी जा सकती है। अनिवासियों को परिवर्तनीयता की अधिक सीमा उपलब्ध करायी गयी है जबकि निवासियों को सीमापारीय पूंजी खाता लेनदेन करने पर तुलनात्मक रूप से अधिक प्रतिबंध हैं। इसके अलावा, न केवल निवासियों और अनिवासियों के बीच अंतर किया जाता है, बल्कि निवासियों की विभिन्न श्रेणियों के बीच भी अंतर किया जाता है।

निवासी

यदि निवासियों को कारपोरेट, वित्तीय संस्थाओं और इंडिविजुअल के बीच श्रेणीबद्ध किया जाता है तो व्यवस्था कारपोरेटों के संबंध में सर्वाधिक उदार होती है जिसके बाद वित्तीय मध्यस्थ और इंडिविजुअलों का स्थान है। कारपोरेटों और वित्तीय मध्यस्थों को अमरीकी निक्षेपागार प्राप्तियों (एडीआर)/वैश्विक निक्षेपागार प्राप्तियों (जीडीआर) के माध्यम से इक्विटी संसाधन जुटाने की अनुमति है और विदेश से ऋण लिखतों के माध्यम से उधार लेने की भी अनुमति है। बाह्य वाणिज्यिक उधार मात्रा और मूल्य नियंत्रणों की शर्त पर स्वचलित और अनुमोदन दोनों माध्यमों से जुटाए जा सकते हैं। स्वचलित माध्यम के तहत उद्योग, बुनियादी सुविधा क्षेत्र और एनबीएफसी (व्यष्टि वित्त कंपनियों सहित) एक वर्ष में 750 मिलियन अमरीकी डॉलर तक उधार ले सकते हैं। इस सीमा से अधिक उधार लेने के लिए पूर्वानुमोदन आवश्यक है। न्यूनतम 3 वर्ष की अवधिपूर्णता से 5 वर्ष से अधिक की अवधिपूर्णता के ऋण के लिए ऑल इन कॉस्ट की सीमा है जिसका दायरा 6 माह से अधिक के लिबोर में 350 आधार अंक और 500 आधार अंक के बीच है। बैंक उनके अबाधित टियर I पूंजी के 50 प्रतिशत तक उधार ले सकते हैं। अंतर्वाहों के अलावा, कारपोरेटों को अनुमति है कि वे उनकी निवल मालियत के 400 प्रतिशत तक विदेश में संयुक्त या पूर्णत: स्वाधिकृत अनुषंगी संस्थाओं में निवेश कर सकते हैं। बैंक भारत में उनकी मांग और मीयादी देयताओं के 25 प्रतिशत तक निवेश विदेश में कर सकते हैं। भारतीय पारस्परिक निधियां विदेश में 7 बिलियन अमरीकी डॉलर की समग्र सीमा तक निवेश कर सकती हैं। इंडिविजुअल्स उदारीकृत विप्रेषण योजना के तहत एक वर्ष में 200,000 अमरीकी डॉलर के समतुल्य राशि का विप्रेषण कर सकते हैं।

अनिवासी

अनिवासी कारपोरेट्स और वित्तीय मध्यस्थ देशी कंपनियों और विभिन्न सेक्टरों के लिखतों में कुछ लिखत-वार और सेक्टर-वार शर्तों पर निवेश कर सकते हैं। संविभागीय निवेश के लिए उन्हें स्वयं को सेबी में पंजीकृत करना होता है। हाल में, व्यष्टियों और समूहों या संघों सहित पात्र विदेशी निवेशकों को भी अपने ग्राहक को जानिए सहित निर्धारित मानदंड पूरे करने के बाद भारत में इक्विटी बाजार में परोक्ष रूप से निवेश करने की अनुमति दी दयी है।

लिखत

लिखतों के संदर्भ में, भारत में होने वाले अंतर्वाहों में संविभागीय प्रवाहों की तुलना में प्रत्यक्ष निवेश, विदेशी मुद्रा ऋण की तुलना में रुपया ऋण और अल्पावधि ऋण की तुलना में मध्यावधि और दीर्घावधि ऋण को अधिमान दिया जाता है।

ऋणेतर प्रवाह के संदर्भ में, समग्र दृष्टिकोण एफडीआई (विदेशी प्रत्यक्ष निवेश) प्रवाहों को काफी उदार बनाने का रहा है ताकि देशी निवेश आवश्यकताएं पूरी की जा सकें और अर्थव्यवस्था की वृद्धि संभावना बढ़ सके। किंतु सामाजिक-आर्थिक प्रभाव को ध्यान में रखते हुए, कुछ क्षेत्रों, यथा लॉटरी व्यवसाय, चिट फंड, निधि कंपनियां, तंबाकू उत्पाद, कृषि और बागवानी और साथ ही वे कार्य/क्षेत्र जो कि निजी क्षेत्र के निवेश के लिए खुले नहीं हैं जैसे कि एटमी ऊर्जा और रेलवे परिवहन (मास रॅपिड परिवहन प्रणाली छोड़कर) में एफडीआई को प्रतिबंधित रखा गया है। मल्टि-ब्रांड खुदरा व्यापार में एफडीआई की अनुमति नहीं है किंतु सरकार इस मामले पर सक्रिय रूप से चर्चा कर रही है।

प्रत्यक्ष निवेश के अलावा, अनिवासी इक्विटी के माध्यम से भी संविभागीय निवेश प्राप्त कर सकते हैं। संविभागीय निवेश वे संस्थाएं कर सकती हैं जो कि सेबी में विदेशी संस्थागत निवेशक (एफआईआई) के रूप में पंजीकृत हैं। एफआईआई को क्षेत्रवार और व्यष्टि सीमाओं में रहने तक पूर्व अनुमोदन की आवश्यकता नहीं रहती। इक्विटी निवेश के प्रत्यावर्तन पर कोई प्रतिबंध नहीं है।

ऋण प्रवाह के संबंध में, नीतिगत प्रयासों में मात्रात्मक और मूल्य आधारित विवेकसम्मत निर्धारण शामिल हैं। एफआईआई निवेश की उच्चतन सीमा सरकारी ऋण में (15 बिलियन अमरीकी डॉलर) और कारपोरेट ऋण में (45 बिलियन अमरीकी डॉलर) है और विथहोल्डिंग कर भी लगता है। स्वचलित और अनुमोदन दोनों माध्यमों के तहत ईसीबी प्रवाह ब्याज दर की सीमा से और स्वचलित माध्यम के तहत के अतिरिक्त मात्रा की सीमा से कम किए गए हैं। इसके अलावा, ईसीबी के लिए अंतिम उपयोग और 3 वर्ष की न्यूनतम अवधिपूर्णता के प्रतिबंध भी हैं। किंतु मात्रात्मक और मूल्य प्रतिबंधों के साथ अल्पावधि के लिए व्यापार ऋण उपलब्ध हैं।

विदेशी मुद्रा में मूल्यवर्गित अनिवासी भारतीय जमाराशियां संबंधित मुद्रा के लिबोर/स्वैप से जुड़ी ब्याज दर सीमा के माध्यम से विनियमित की जाती हैं। किंतु रुपये में मूल्यवर्गित अनिवासी भारतीय जमाराशियों को हाल में इस शर्त पर विनियमन से हटा दिया गया है कि उन पर लागू ब्याज दर तुलनीय अवधिपूर्णता की देशी जमाराशियों पर प्रस्तावित दर से अधिक नहीं होना चाहिए। अनिवासी भारतीय जमाराशियों के प्रत्यावर्तन पर प्रतिबंध नहीं है।

सारांश रूप में, एक क्रमिक और सुविचारित उदारीकरण ने भारत के पूंजी खाते को क्रमिक रूप से खोला है जिसमें ऋण की तुलना में इक्विटी निवेश को अधिमान दिया गया है। अब मैं 1991 के भुगतान संतुलन के संकट के समय से भारत में पूंजी प्रवाहों की प्रवृत्ति की समीक्षा करना चाहूंगा।

भारत में पूंजी प्रवाहों की प्रवृत्ति

संकट तक के समय में पूंजी खाते में ऋण निर्माता प्रवाहों की अधिकता थी। उदाहरण के लिए, 1990-91 में ऋण निर्माता प्रवाह पूंजी अंतर्वाहों के लगभग 97 प्रतिशत थे। ऋण निर्माता प्रवाहों में बाह्य सहायता का बड़ा घटक था। किंतु भुगतान संतुलन के संकट, जिससे व्यापक सुधारों की प्रेरणा मिली थी, के बाद स्थिति में काफी परिवर्तन हुआ।

1991-92 के बाद की अवधि को आर्थिक वृद्धि के आधार पर आर्थिक निष्पादन के आधार पर तीन चरणों में देखा जा सकता है: चरण I (1992-93 से 2002-03) जब भारत की आर्थिक वृद्धि 1991-92 के 1.4 प्रतिशत के निम्न स्तर से बढ़कर 5.8 प्रतिशत के वार्षिक औसत पर पहुंच गई; चरण II (2003-04 से 2007-08) जब भारत ने 8.7 प्रतिशत की उच्चतम औसत वार्षिक वृद्धि दर्ज की; और चरण III (2008-09 से 2010-11) वैश्विक वित्तीय संकट के बाद की हाल की अवधि जो कि भारतीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि और पूंजी अंतर्वाहों की मात्रा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है (सारणी 2)। इन चरणों के दौरान पूंजी प्रवाहों का व्यवहार कैसा था। यह वह मामला है जिस पर मैं अब आऊंगा।

सारणी 2: भुगतान संतुलन के प्रमुख घटक

(मिलियन अमरीकी डॉलर)

	संकट का वर्ष		औसत अवधि		
	1990-91	1991-92	1992-93 से 2002-03	2003-04 से 2007-08	2008-09 से 2010-11
1. इक्विटी	**103**	**133**	**4,549**	**20,036**	**33,231**
1.1 निवल एफडीआई	97	129	2,360	6,544	16,566
1.2 संविभागीय निवेश	6	4	2,189	13,492	16,664
2. ऋण	**7,069**	**4,272**	**3,885**	**17,913**	**19,884**
2.1 बाह्य सहायता, निवल	2,204	3,034	747	931	3,424
2.2 ईसीबी, निवल	2,254	1,462	1,393	8,698	7,456
2.3 एनआरआई जमाराशियां, निवल	1,536	290	1,773	1,993	3,483
2.4 अल्पावधि व्यापार ऋण	1,075	-514	-28	6,290	5,521
3. अन्य पूंजी	**16**	**-628**	**184**	**7,050**	**-14,118**
4. पूंजी खाता शेष (1+2+3)	**7,188**	**3,777**	**8,617**	**44,999**	**38,997**
5. चालू खाता शेष	**-9,680**	**-1,178**	**-2,340**	**-4,718**	**-36,860**
6. आरक्षित निधि में परिवर्तन (5+6) *(+: वृद्धि/–: कमी)*	**-2,492**	**2,599**	**6,277**	**40,280**	**2,137**

1992-2003 की 11 वर्ष की अवधि के दौरान,भारत में पूंजी अंतर्वाहों का वार्षिक औसत 8.6 बिलियन अमरीकी डॉलर था। इक्विटी के पक्ष में महत्वपूर्ण शिफ्ट हुआ था जो कि पूंजी अंतर्वाहों के 54 प्रतिशत से अधिक था। इक्विटी के दायरे में, एफडीआई घटक महत्वपूर्ण था। ऋण घटक में, एनआरआई जमाराशियां प्रमुख थीं। 2003-08 की 5 वर्ष की अवधि के दौरान पूंजी अंतर्वाह तेजी से बढ़कर उनका वार्षिक औसत 45 बिलियन अमरीकी डॉलर हो गया। अंतर्वाह की संरचना निरंतर इक्विटी की ओर बनी रही हालांकि उसका हिस्सा कुछ कम होकर 53 प्रतिशत रह गया। किंतु इक्विटी के भीतर, संविभागीय निवेश की ओर शिफ्ट हुआ था। ऋण प्रवाहों में व्यापार ऋण और बाह्य वाणिज्यिक उधारों की प्रमुखता थी।

2008-11 की 3 वर्ष की अवधि के दौरान निवल अंतर्वाह कम होकर 39 बिलियन अमरीकी डॉलर के वार्षिक औसत पर आ गया। पूंजी अंतर्वाहों की संरचना निरंतर इक्विटी की ओर बनी रही जिसमें एफडीआई और संविभागीय निवेश का समान हिस्सा था। ऋण घटक में बाह्य वाणिज्यिक उधारों की प्रमुखता थी (सारणी 3)।

सारणी 3: पूंजी प्रवाहों में ऋण और इक्विटी का तुलनात्मक हिस्सा

(प्रतिशत में)

	संकट का वर्ष		औसत अवधि		
	1990-91	1991-92	1992-93 से 2002-03	2003-04 से 2007-08	2008-09 से 2010-11
1. इक्विटी	**1.5**	**3.0**	**54.0**	**52.8**	**62.6**
1.1 निवल एफडीआई	1.4	2.9	28.0	17.2	31.2
1.2 संविभागीय निवेश	0.1	0.1	26.0	35.6	31.4
2. ऋण	**98.5**	**97.0**	**46.0**	**47.2**	**37.4**
2.1 बाह्य सहायता, निवल	30.7	68.9	8.8	2.5	6.4
2.2 ईसीबी, निवल	31.4	33.2	16.5	22.9	14.0
2.3 एनआरआई जमाराशियां, निवल	21.4	6.6	21.0	5.2	6.6
2.4 अल्पावधि व्यापार ऋण	15.0	-11.7	-0.3	16.6	10.4

टिप्पणी: पूंजी खातों की इक्विटी ऋण संरचना में अन्य पूंजी शामिल नहीं है।

2000 के दशक के मध्य से उभरी अन्य महत्वपूर्ण प्रवृत्ति भारत के बहिर्वाही एफडीआई में तेज वृद्धि होना है जो कि भारतीय कारपोरेटों की बाह्य दिशा में रुचि में वृद्धि दर्शाती है। भारत का बहिर्वाही एफडीआई 2004-05 के 2.2 बिलियन अमरीकी डॉलर से बढ़कर 2008-09 में 19.4 बिलियन अमरीकी डॉलर हो गया और बाद में कुछ कम होकर 2010-11 में 16.5 बिलियन अमरीकी डॉलर रह गया (चार्ट 3)। यह भारत की पूंजी खाता उदारीकरण प्रक्रिया, जिससे दोतर्फा प्रवाह को प्रोत्साहन मिला, को रेखांकित करता है।

चार्ट 3: भारत से बहिर्वाही एफडीआई

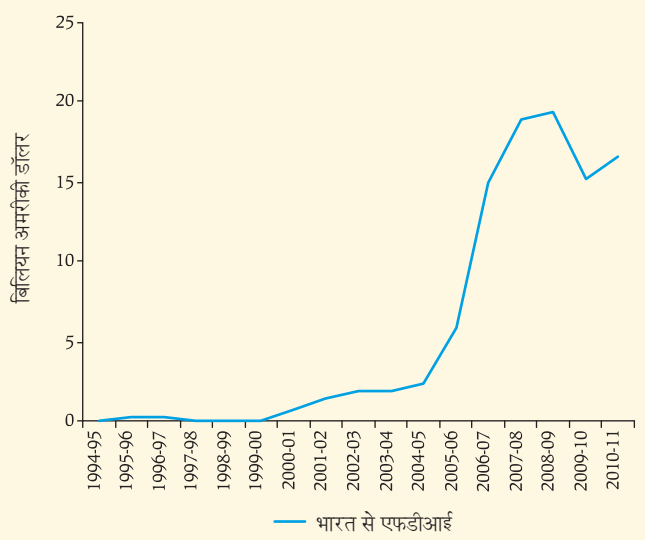

इस बढ़ती प्रवृत्ति और पूंजी संरचना में परिवर्तन ने भुगतान संतुलन को किस प्रकार प्रभावित किया यह एक अलग मामला है जिस पर मैं अब कुछ कहना चाहता हूं।

प्रतिबंधक पूंजी खाता व्यवस्था के साथ अंतर्मुखी भारतीय अर्थव्यवस्था, जो कि इक्विटी अंतर्वाहों के प्रति पक्षपाती थी, बाह्य आघातों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील थी। अत: खाड़ी युद्ध और तेल के मूल्यों में उछाल के कारण चालू खाते का घाटा बढ़कर 1990-91 में जीडीपी के 3.0 प्रतिशत होना निरंतर नहीं रह सका (सारणी 4)। 1990-91 से पहले भी भारत को आवधिक रूप से महत्वपूर्ण बाह्य वित्तीय बाधाओं का सामना करना पड़ा था और समय-समय पर आईएमएफ की सहायता लेनी पड़ी थी। 1990 के दशक में शुरू किए गए व्यापक प्रभाव वाले सुधारों, जिनमें व्यापार और वित्तीय उदारीकरण शामिल था, के कारण भारत की बाह्य क्षेत्र की आघात सहनीयता में काफी वृद्धि हुई।

1992-2003 के दौरान भारत के चालू खाते में 0.6 प्रतिशत की थोड़ा सा कम वार्षिक औसत घाटा दिखा। जीडीपी के 2.2 प्रतिशत के पूंजी खाता शेष के मद्देनजर जीडीपी के 1.6 प्रतिशत वार्षिक का विदेशी मुद्रा भंडार बन गया था। 2003-08 की बाद की अवधि में, चालू खाते के घाटे में सुधार हुआ और उसका औसत 0.5 प्रतिशत हुआ। जीडीपी के 5.1 प्रतिशत वार्षिक के मजबूत पूंजी अंतर्वाह के कारण विदेशी मुद्रा भंडार बढ़कर जीडीपी के 4.6 प्रतिशत वार्षिक हो गयी। इस अवधि के अंतिम वर्ष में जीडीपी के प्रतिशत के रूप में भारत का विदेशी मुद्रा भंडार मार्च 2008 के अंत में बढ़कर 25 प्रतिशत हो गया (चार्ट 4)। 2008-11 की हाल की अवधि में चालू खाते के घाटे में काफी वृद्धि हुई और उसका औसत जीडीपी के 2.6 प्रतिशत वार्षिक हो गया (सारणी 4 और चार्ट 5)। पूंजी अंतर्वाह कम होकर जीडीपी के 2.7 प्रतिशत वार्षिक रह जाने

सारणी 4: जीडीपी के प्रतिशत के रूप में भुगतान संतुलन के प्रमुख घटक

(प्रतिशत में)

	संकट का वर्ष		औसत अवधि		
	1990-91	1991-92	1992-93 से 2002-03	2003-04 से 2007-08	2008-09 से 2010-11
1. इक्विटी	**0.0**	**0.0**	**1.2**	**2.3**	**2.3**
1.1 निवल एफडीआई	0.0	0.0	0.6	0.8	1.1
1.2 संविभागीय निवेश	0.0	0.0	0.6	1.5	1.2
2. ऋण	**2.2**	**1.6**	**1.0**	**2.0**	**1.4**
2.1 बाह्य सहायता, निवल	0.7	1.1	0.2	0.1	0.2
2.2 ईसीबी, निवल	0.7	0.6	0.4	1.0	0.5
2.3 एनआरआई जमाराशियां, निवल	0.5	0.1	0.4	0.2	0.3
2.4 अल्पावधि व्यापार ऋण	0.3	-0.2	0.0	0.7	0.4
3. अन्य पूंजी	**0.0**	**-0.2**	**0.0**	**0.8**	**-1.0**
4. पूंजी खाता शेष (1+2+3)	**2.2**	**1.4**	**2.2**	**5.1**	**2.7**
5. चालू खाता शेष	**-3.0**	**-0.4**	**-0.6**	**-0.5**	**-2.6**
6. आरक्षित निधि में परिवर्तन (5+6) *(+: वृद्धि/ – : कमी)*	**-0.8**	**1.0**	**1.6**	**4.6**	**0.1**
ज्ञापन मद:					
वास्तविक जीडीपी वृद्धि दर	**5.3**	**1.4**	**5.8**	**8.9**	**7.8**

चार्ट 4: जीडीपी के प्रतिशत के रूप में विदेशी मुद्रा भंडार

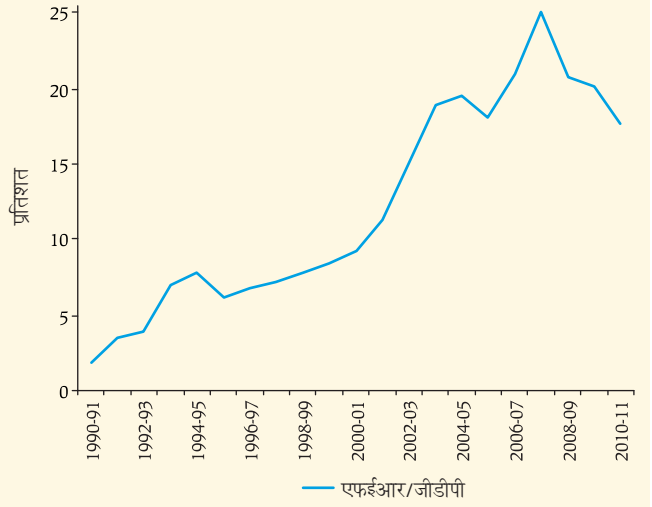

चार्ट 5: चालू खाता शेष और पूंजी प्रवाह (जीडीपी के प्रतिशत के रूप में प्रतिशत)

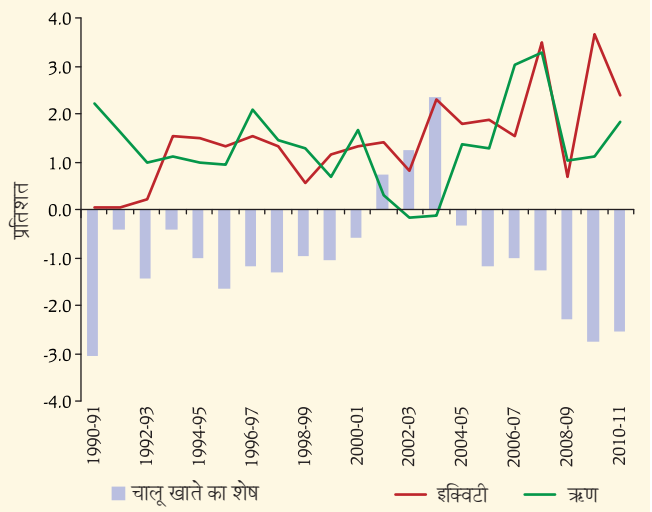

के कारण विदेशी मुद्रा भंडार में जीडीपी के 0.1 प्रतिशत वार्षिक की दर पर कम वृद्धि हुई। अद्यतन सूचना से पता चलता है कि 2011-12 की पहली छमाही में चालू खाते का घाटा बढ़कर जीडीपी के 3.6 प्रतिशत हो गया। वर्तमान वैश्विक वित्तीय तनाव के अंतर्गत पूंजीगत अंतर्वाह चालू खाते के घाटे से कम रहने के कारण विदेशी मुद्रा भंडार से आहरण करना पड़ा।

उल्लिखित चर्चा से पता चलता है कि भारत में 1990-91 से (2001-04 के तीन वर्ष छोड़कर) निरंतर चालू खाते का घाटा रहा है। चालू खाते के घाटे का औसत लंबी अवधि तक कम रहने के बावजूद 2008-09 से इसमें वृद्धि हुई है। इसका क्या अर्थ है? चालू खाते का घाटा निरंतर बने रहने से भारत पर अनिवासियों के दावों में वृद्धि होती है। यह भारत के अंतरराष्ट्रीय निवेश की स्थिति (आईआईपी) में होते हैं जो इसके बाह्य तुलनपत्र की रूपरेखा बनाते हैं। भारत की अंतरराष्ट्रीय देयताएं अंतरराष्ट्रीय आस्तियों से अधिक थीं और इन दोनों के बीच का अंतर मार्च 2008 के अंत के (-) 51 बिलियन अमरीकी डॉलर से काफी बढ़कर जून 2011 के अंत में (-) 238 बिलियन अमरीकी डॉलर हो गया किंतु बाद में कुछ सुधरकर सितंबर 2011 के अंत में (-) 225 बिलियन अमरीकी डॉलर हो गया (चार्ट 6)। हमारी देयताएं मुख्यत: संविभागीय निवेश, एफडीआई और बाह्य वाणिज्यिक उधारों के कारण थीं। हमारी अंतरराष्ट्रीय आस्तियों का बड़ा भाग भारतीय रिज़र्व बैंक की विदेशी मुद्रा भंडार आस्तियों के रूप में था जिसके बाद कारपोरेट क्षेत्र के विदेश में किए गए प्रत्यक्ष निवेश का स्थान था।

जहां आईआईपी तुलनपत्र की पूरी स्थिति दर्शाती है, वहीं ऋणेतर उत्पादक प्रवाहों के लिए हमारे अधिमान के कारण हमारी

चार्ट 6: भारत के अंतरराष्ट्रीय निवेश की स्थिति

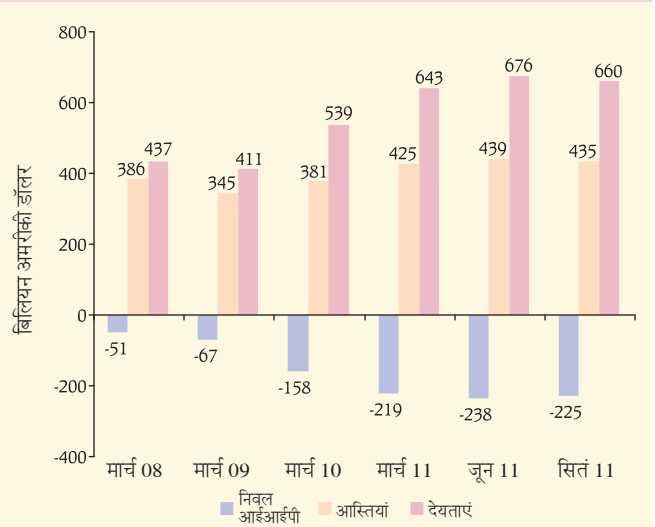

चार्ट 7: भारत का बाह्य ऋण

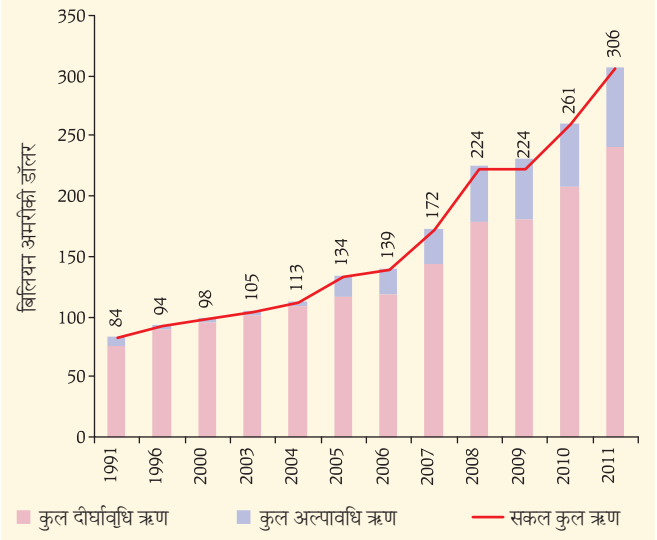

बाह्य ऋण की स्थिति कैसी है? उल्लेखनीय रूप से, भारत का बाह्य ऋण स्टॉक 1991 और 2003 के बीच की 13 वर्षों की अवधि के दौरान 84-105 बिलियन अमरीकी डॉलर के दायरे में स्थिर बना रहा। तब से, ऋण स्टॉक बढ़कर मार्च 2011 तक 3.6 बिलियन अमरीकी डॉलर हो गया। किंतु जीडीपी-भारत का बाह्य ऋण अनुपात 1990-91 के 28.7 प्रतिशत से कम होकर 2010-11 में 17.3 प्रतिशत रह गया। इसी अवधि में ऋण चुकौती अनुपात 35.3 प्रतिशत से कम होकर 4.2 प्रतिशत रह गया।[4] बाह्य ऋण की संरचना के संबंध में, सरकार का हिस्सा मार्च 2001 के कुल बाह्य ऋण से तेजी से कम होकर मार्च 2011 तक 24.2 प्रतिशत रह गया और निजी ऋण में तदनुरूपी वृद्धि हुई (चार्ट 7 और 8)।

भारत की बाह्य ऋण चुकौती की स्थिति में सुधार होने के बावजूद यूरो क्षेत्र में वित्तीय संकट से अंतर्वाहों में कमी आने के कारण हमारे कुछ बाह्य संवेदनशीलता संकेतक दुर्बल स्थिति दर्शाने लगे। उदाहरण के लिए, कुल ऋण का आरक्षित कवर 100 प्रतिशत से कम हो गया (सारणी 5)।

समापन

1991 के संकट के समय से पिछले दो वर्षों में हमारे भुगतान संतुलन की गतिविधियों और पूंजी प्रवाहों की समीक्षा से हम कौनसे मुख्य निष्कर्ष निकाल सकते हैं?

[4] ऋण चुकौती अनुपात ऋण की दीर्घकालिकता का संकेतक होता है जो कि भुगतान संतुलन की चालू प्राप्तियों के प्रति कुल ऋण चुकौती भुगतान के अनुपात से नापा जाता है।

चार्ट 8: बाह्य ऋण के संकेतक

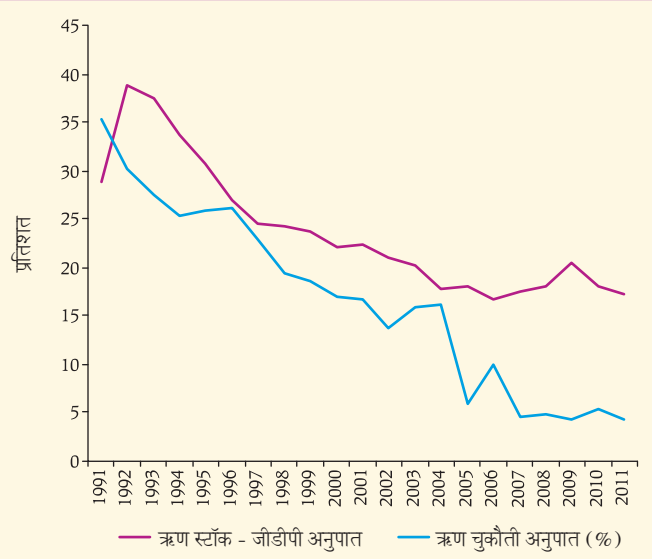

पहला, वैश्विक पूंजी प्रवाह अब ईडीई और उन्नत अर्थव्यवस्थाओं के बीच दोतर्फा गतिविधियों में वृद्धि दर्शाते हैं। किंतु ईडीई अस्थिरता और पूंजी प्रवाह अचानक रुक जाने के प्रति संवेदनशील बने रहे। इसका कारण यह है कि अंतरराष्ट्रीय पूंजी बाजारों में ईडीई द्वारा अपनी मुद्रा में उधार लेने की सीमाएं हैं जिसे 'ओरिजनल सिन' कहा जाता है। यह बात हाल के संकट से देखी जा सकती है। 2008 के संकट का केंद्र अमरीका था किंतु भारत सहित ईडीई को पूंजी प्रवाह

सारणी 5: बाह्य क्षेत्र की संवेदनशीलता के संकेतक (प्रतिशत)

संकेतक	मार्च 2008 के अंत में	मार्च 2011 के अंत में	सितं 2011 के अंत में
1. जीडीपी-कुल ऋण अनुपात	18.1	17.4	17.8*
2. कुल ऋण-अल्पावधि ऋण अनुपात (मूल अवधिपूर्णता)	20.4	21.2	21.9
3. कुल ऋण-अल्पावधि ऋण अनुपात (अवशिष्ट अवधिपूर्णता)	37.6	42.2	43.4*
4. कुल ऋण-रियायती ऋण अनुपात	19.7	15.5	14.7
5. कुल ऋण-आरक्षित निधि अनुपात	138.0	99.5	95.4
6. आरक्षित निधि-अल्पावधि ऋण अनुपात	14.8	21.3	22.9
7. आयातों का आरक्षित निधि कवर (माह)	14.4	9.6	8.5
8. ऋण चुकौती भुगतान और आयातों का आरक्षित निधि कवर (माह)	13.6	9.1	8
9. ऋण चुकौती अनुपात (चालू प्राप्तियों के प्रति ऋण चुकौती भुगतान)	4.8	4.3	4.9
10. बाह्य ऋण (बिलियन अमरीकी डॉलर)	224.4	306.4	326.6
11. जीडीपी-निवल अंतरराष्ट्रीय निवेश अनुपात	-4.1	-13.0	-12.3*

*वार्षिकीकृत

गंभीर रूप से प्रभावित हुआ था।अब यह केंद्र यूरोप में अंतरित हो गया है किंतु ईडीई को पूंजी प्रवाह अब भी निरंतर बाधापूर्ण बना हुआ है।

दूसरा, ऐसा प्रतीत होता है कि ईडीई ने पुराने अनुभव और वर्तमान संकटों से और विशेष रूप से 1980 के दशक के लैटीन अमरीकी ऋण संकट और 1997 के पूर्व एशियाई मुद्रा संकट से बहुत कुछ सीखा है। इससे पूंजी प्रवाहों के महत्व और ईडीई द्वारा इक्विटी प्रवाहों को अधिमान दिया जाना स्पष्ट हो जाता है। यह इक्विटी और विशेष रूप से एफडीआई के पक्ष में ईडीई को पूंजी प्रवाह की संरचना में परिवर्तन से भी दिखा।

तीसरा, ईडीई को पूंजी प्रवाह उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में कम ब्याज दर और निवेश अवसरों की कमी से उत्पन्न पुश फैक्टरों और साथ ही प्राप्तकर्ता देश में मजबूत आर्थिक मूल तत्वों और वृद्धि की संभावना से उत्पन्न पुल फैक्टरों पर निर्भर करते हैं। विशेष रूप से, एफडीआई जैसे स्थिर प्रवाह पुल फैक्टरों से अधिक प्रभावित होते हैं।

चौथा, विदेशी पूंजी की उपलब्धता अमिश्रित लाभ नहीं है। जहां इससे देशी संसाधनों की बाधा कम होती है, वहीं यह अर्थव्यवस्था को दो प्रकार से अस्थिर कर सकती है: एक, अधिक पूंजी अंतर्वाह से आस्ति मूल्य की मुद्रास्फीति हो सकती है और विनिमय दर के अधिक आकलन के माध्यम से प्रतिस्पर्धात्मकता की हानि हो सकती है; दो, जोखिम से बचने संबंधी अचानक होने वाले बहिर्वाह से मुद्रा संकट निर्माण हो सकता है।

पांचवां, पूर्ववर्ती प्रमुख दृष्टिकोण पूंजी की मुक्त गतिविधि की ओर झुका हुआ था। किंतु 2008 के हाल के वैश्विक वित्तीय संकट के बाद इस बात को स्पष्ट रूप से मान्यता मिली है - यहां तह कि आईएमएफ, विश्व बैंक और जी20 जैसी बहुपक्षीय संस्थाओं द्वारा भी - कि पूंजी नियंत्रण कुछ स्थितियों में ही वांछित होगा।

छठा, भारत की बाह्य क्षेत्र की नीति में हमारे पूंजी खाता प्रबंधन के किसी रूप में हमेशा विश्वास किया गया है जिसमें इक्विटी अंतर्वाहों को तरजीह दी जाती है हालांकि अब इस नीति को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता मिली है। पूंजी खाते को सावधानीपूर्वक खोलने की यह नीति से 1991 के संकट के समय से हमारे भुगतान संतुलन की स्थिरता में सहायता मिली है और इसमें यह बात दिखी भी है। हमारे पूंजी खाते की संरचना लगभग संपूर्णत: ऋण से प्रमुख रूप से इक्विटी में अंतरित हुई है।

सातवां, हमारे भुगतान संतुलन की तुलनात्मक स्थिरता के बावजूद, 2008 के वैश्विक वित्तीय संकट के बाद में कुछ तनाव उभरा था क्योंकि चालू खाते का घाटा बढ़ने के कारण पूंजी अंतर्वाहों में कमी आ गयी थी। यह बात बाह्य क्षेत्र के संवेदनशीलता के कुछ संकेतकों की बुरी स्थिति से भी प्रकट हुए। अपने चालू खाते के वित्तपोषण के लिए निजी पूंजी अंतर्वाहों पर हमारी निर्भरता में वृद्धि हुई है। इसके अलावा, वैश्विक वित्तीय बाजारों की अनिश्चितता पर भी हमें ध्यान देना होगा। इन घटनाओं के कारण देशी नीति में व्यापक सुधार करना आवश्यक हो गया है जिसमें व्यापार प्रतिस्पर्धात्मकता और ऊर्जा सुरक्षा पर अधिक ध्यान देना होगा ताकि हमारे भुगतान संतुलन को मजबूत करने के लिए एफडीआई हेतु पुल फैक्टर में वृद्धि की जा सके।

अंत में, समापन के तौर पर मैं आप जैसे बुद्धिमान लोगों को क्या सलाह दे सकता हूं? पूंजी प्रवाह जैसे ही आपके टैलेंट की कोई सीमा नहीं है। आप सही अर्थों में वैश्विक नागरिक हैं। एक ओर जहां यह एक अवसर है, वहीं दूसरी ओर यह एक चुनौती है कि आप अपनी सर्जक क्षमता को मुक्त करें और वैश्विक कल्याण की नई संभावनाओं की खोज करें।